ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 232-233
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

महाकवि कालिदास के नाटकों में संस्कार

1. सतीश कुमार यादव
2. डॉ0 शुकदेव वाजपेयी

1. शोध अध्येता, 2. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष– स्वामी विवेकानन्द विश्वविद्यालय, सागर (म0प्र0), भारत

Received-23.09.2023, Revised-27.09.2023, Accepted-30.09.2023 E-mail: aaryvart2013@gmail.com

सारांशः ***भारत में नाटकों की उत्पत्ति बहुत प्राचीन काल में हो चुकी थी। नाटक में मुख्य अंग जैसे अभिनय, संवाद, नृत्य, संगीत आदि का अस्तित्व बहुत पहले से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में बताया है कि ''ऋग्वेद के सूक्तों से ज्ञात होता है कि सोम–विक्रय के समय एक प्रकार का अभिनय हुआ करता था।'' वैदिक युग के कुछ कर्मकाण्ड भी इस प्रकार हुआ करते थे जिससे इस तथ्य को बल मिलता है कि उस समय नृत्य तथा नाट्य का प्रचलन अवश्य था। ''ऋग्वेद के संवाद सूक्त 'यम–यमी', 'पुरुरवा–उर्वशी', 'सरमा–पणि' आदि में भी नाट्य के अंश विद्यमान हैं। सामवेद में तो संगीत तत्त्व का ही प्राधान्य है।'' वाजसनेयी संहिता (30/4) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (3/4/2) में वर्णित 'शैलूष' शब्द का अर्थ प्रो. कीथ ने गायक या नर्तक माना है। किन्तु इसका अर्थ यदि 'नट' कहें तो भी कोई विरोध नहीं है। कौषीतकि ब्राह्मण में नृत्य–गीत तथा संगीत को मुख्य विद्याओं में गिना गया है। 'महाव्रत' में वर्षा के लिये तथा पशुओं की समृद्धि के लिये अग्नि के चारों ओर कुमारियों द्वारा नृत्य का वर्णन है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में ''विवाह–सम्पन्न से पूर्व अग्निदेव के समक्ष स्त्रियों के नृत्य का संकेत मिलता है।''***

कुंजीभूत शब्द– अभिनय, संवाद, नृत्य, संगीत, अस्तित्व, विद्यमान, संस्कृत साहित्य, सोम–विक्रय, वैदिक युग, कर्मकाण्ड, नाट्य।

रामायण और महाभारत काल में भी लोगों का परिचय नाट्यकला से था। ''रामायण में नट, नर्तक, शैलूष, कुशीलव आदि शब्दों का उल्लेख अनेकशः प्राप्त होता है।'' ''महाभारत में भी नट, नर्तक, गायक सूत्रधार आदि का उल्लेख मिलता है।'' महाभारत के हरिवंश पर्व में नाटक के अभिनय का विशद वर्णन है। सर्वप्रथम रामायण में नाटक के अभिनय का उल्लेख है। तदुपरान्त 'कौबेररम्भाभिसार' नामक प्रकरण का वर्णन है।

संस्कारों का प्रचलन हमारे देश में वैदिककाल से ही है। क्योंकि इसके प्रमाण हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं। ऋग्वेद में चार संस्कारों का वर्णन मिलता है–गर्भाधान, पुंसवन, विवाह तथा अन्त्येष्टि। अथर्ववेद में एकादश संस्कारों का वर्णन मिलता है–गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि। आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी एकादश संस्कारों को बताया गया है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि है। किन्तु भारतीय संस्कृति में वर्णित षोडश संस्कार सर्वमान्य है। जो इस प्रकार है–गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि।

संस्कृत रूपकों में पुंसवन का उल्लेख महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में इस प्रकार बताया है–समुद्र के द्वारा व्यापार करने वाला धनमित्र नामक प्रमुख वणिक् का जहाज टूट जाने से मर गया। किन्तु महाराज सुनने में आया है कि उसकी एक स्त्री जो अयोध्या के सेठ की पुत्री है उसका पुंसवन संस्कार अभी हुआ है।
''निर्वृत्तपुंसवनाजायाऽस्याश्रूयते।''

शुद्धि संस्कारों में पुंसवन संस्कार प्रथम संस्कार होता था। यह गर्भाधान के तीसरे मास में होता था। इसमें पत्नी सारे दिन तक उपवास करती थी। शाम के समय पति अपनी पत्नी को दही में एक यव की बाल और दो माष के बराबर दाने मिलाकर पत्नी को पीने के लिए देता था और प्रत्येक बार उससे पूछता था कि–'तुम क्या पी रही हो?' पति के पूछने पर पत्नी प्रत्येक बार 'पुंसवने पुंसवने' कहा करती थी।

जातकर्म बालक के जन्म के पश्चात् होने वाला संस्कार था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाकवि कालिदास ने शकुन्तला के पुत्र 'सर्वदमन' (भरत) का विधिवत् जातकर्म संस्कार का उल्लेख किया है।

भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'कालिदास का भारत' में उल्लेख किया है कि 'यह संस्कार नालोच्छेद से पहले किया जाता था। पुत्रोत्पत्ति की सूचना मिलते ही पिता जन्मना बालक का मुख दर्शन करता था और स्नानमार्जन के पश्चात् उचित रीति से पितरों का श्राद्ध करके बच्चे को घी और मधु चटाता था।'

हिन्दू समाज में पुत्र का बड़ा ही महत्त्व था उसी के माध्यम से परिवार की निरन्तरता बनी रहती थी। इस प्रकार पुंसवन संस्कार का उद्देश्य परिवार तथा इसके माध्यम से समाज का कल्याण करना होता है।

उपनयन संस्कार–यह एक प्रकार का यज्ञोपवीत संस्कार कहलाता था। यह संस्कार भी संस्कृत रूपकों में उल्लिखित है।

भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'कालिदास का भारत' भाग–2 में उल्लेख किया है कि 'उपनयन संस्कार यज्ञोपवीत संस्कार है। इस संस्कार को करने के पश्चात् बालक यज्ञोपवीत धारण करके ब्रह्मचारी बन जाता था और विद्याध्ययन की शुरुआत करता था।' मानवधर्म शास्त्र के आदेशानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए उपनयन संस्कार का समय क्रमशः आठ से सोलह, ग्यारह और बाइस और बारह से चौबीस वर्ष तक माना जाता था। इस संस्कार का सामाजिक एवं आध्यात्मिक दोनों महत्त्व था। इस संस्कार के बाद ही बालक अपने वर्ग तथा समाज का पूर्ण सदस्य बन पाता था तथा अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक विरासत को प्राप्त करने का अधिकार

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

उसे मिलता था तभी वह वेद वेदांगों को पढ़ने का अधिकारी होता था।

समावर्तन संस्कार– समावर्तन संस्कार का उल्लेख 'अविमारक' नाटक में इस प्रकार किया गया है। समावर्तन संस्कार विद्याध्ययन की समाप्ति पर किया जाता था वेदानुशीलन के पश्चात् गुरु की अनुमति से ब्रह्मचारी का अपने घर लौट आना ही समावर्तन संस्कार कहलाता था।

विवाह संस्कार : समावर्तन संस्कार के पश्चात् विवाह संस्कार किया जाता था। यह संस्कार विशेष महत्त्व रखता था। यह ब्रह्मचारी के लिए गृहस्थाश्रम का मार्ग प्रशस्त करता है। इसी संस्कार में रहकर मनुष्य शेष आश्रम की पूर्ति करता था। महर्षि कण्व ने भी अपनी पालिता पुत्री को गृहस्थाश्रम की महत्ता को बताकर संन्यास आश्रम का रास्ता बताया था, कहा था कि अपनी गृहस्थाश्रम का भार अपने पुत्र को सौंप कर इस आश्रम में पुनः आना। इसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने इस प्रकार किया है–

"भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।।"

अर्थात् अपने अद्वितीय पुत्र (भरत) को सिंहासन पर बैठाकर, अपने परिवार का भार डालकर पति के साथ पुनः इस शान्त आश्रम में आकर रहोगी।

अन्त्येष्टि संस्कार– अन्त्येष्टि संस्कार मृत्यु के पश्चात् किया जाता था। इसके अन्तर्गत समस्त मृतक क्रियाओं का समावेश होता है। मृतक के शव का स्पर्श अशौच माना जाता था। अशौच की शुद्धि के लिए गंगा, यमुना आदि पवित्र नदियों के जल में स्नान किया जाता था। पितरों की तृप्ति के लिए उदक दान या तिल का दान और निर्वाण की क्रियाएं भी प्रचलित थीं। पितरों की स्मृति में सांवत्सरिक श्राद्ध किए जाते थे। श्राद्ध दिवस पर श्रद्धानुसार दान भी दिया जाता था। श्राद्ध के अवसर पर मनुष्यों के लिए घासों में कुश, औषधों में काला तिल आदि। इससे तृप्त पितर पुत्र–लाभ का फल प्राप्त करते थे और स्वर्ग में देवों के साथ विमानों में निवास करते थे तथा आवागमन के बन्धन से मुक्त होकर स्थिर हो जाते थे। इत्यादि का उल्लेख संस्कृत रूपकों मिलता है। इसके साथ ही साथ महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी कहा है कि जब राजा दुष्यन्त धनमित्र नामक व्यापारी के वृत्तान्त को सुनें तब उनका दुःख दुगुना हो गया और संशय को प्राप्त हो गए।

इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में मृतकों का श्राद्ध और तर्पण प्रचलित हो चुका था। मृतकों का श्राद्ध आदि करना वस्तुतः वेदोक्त विधि नहीं है, यह सनातनी प्रथा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, 1997, पृ.सं.464.
2. स्वामी दयानन्द सरस्वती–ऋग्वेद, 2010, 10–10, 10–95, 10–108.
3. आचार्य बलदेव उपाध्याय–संस्कृत साहित्य का इतिहास, 1997, पृ.सं.465.
4. श्रीनिवास कट्टी शास्त्री–वाल्मीकि रामायण, 1983, 67/15.
5. पं.रामनारायण दत्त पाण्डेय– महाभारत, 2055, वनपर्व 15/13.
6. डॉ.कपिल देव द्विवेदी, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1984, अंग–6, पृ.370.
7. डॉ.कपिल देव द्विवेदी, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1984, अंग–4, पृ.236.

*****